I/MPHIN/2013/61414

ISSN 2278-0327
Refereed journal

ज्योतिर्वेद - प्रस्थानम्

स्कृत वाङ्मय की शोधपत्रिका - संस्कृत छात्रों की मार्गदर्शिका

म वर्ष, प्रथम अंक

मार्च-अप्रैल 2018

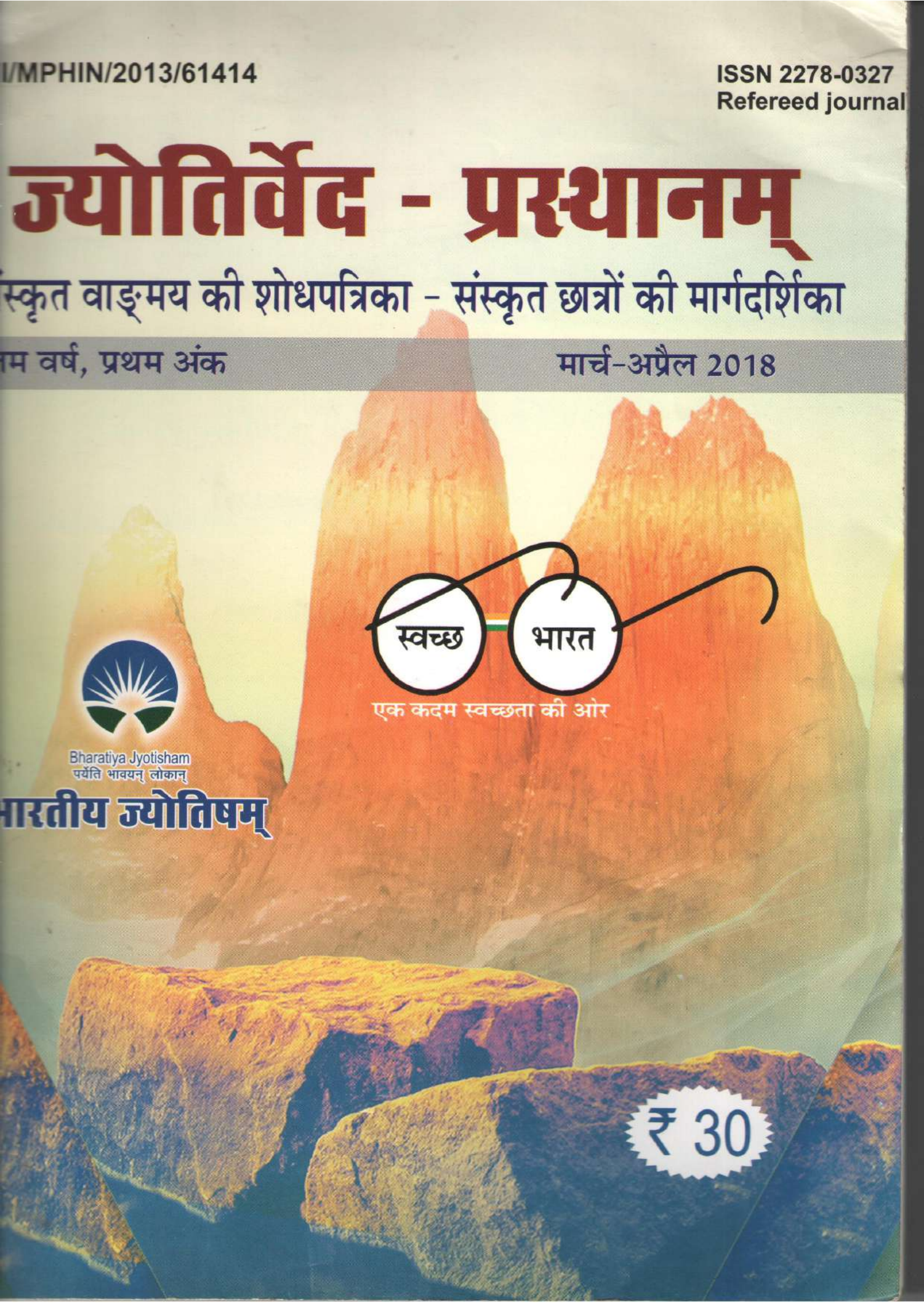

विषय-सूची

क्र.	लेख विषय	लेखक	पृ.सं.
1.	वैदिक हिंसा, एक षड्यन्त्र Animal sacrifice in Vedic literature – a conspiracy of faith destruction	डॉ. विवेक शर्मा	02
2.	मानवोपकारिका बुद्धि Pro-human conscience	प्रतिज्ञा आर्या	05
3.	ऋग्वैदिक समाज में राज्य एवं राजा की परिकल्पना The hypothetic positions of king and kingdom in Rigvedic Society	डॉ. अर्चना चौहान	08
4.	प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति की वर्तमान में प्रासंगिकता Present day relevance of ancient Indian education system	सपना रावत	12
5.	भारतीय संस्कृति के परिवेश में In context of Indian culture	श्रीमती अंजू विजयवर्गीय	18
6.	स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन Swami vivekananda's educational philosophy	डॉ. गणेशशङ्कर विद्यार्थी	20
7.	आदिकाव्य में ज्योतिर्विज्ञान Jyotirvigyana in Adikavya	डॉ. विवेक शर्मा	22
8.	मूल्यपरक शिक्षा की भूमिका Role of value based education	डॉ. पिंकी मलिक	24
9.	हिमाचल के अभिलेखों में संस्कृत Sanskrit in Himachal's manuscript (of all forms)	ओम प्रकाश	28
10.	आधुनिक परिप्रेक्ष्य में साहित्य Literature in modern context	पङ्कज	31

पुनरीक्षण समिति

प्रो. विद्यानन्द झा
प्राचार्यचर - राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल

प्रो. क्षेत्रवासी पण्डा
अध्यक्ष - तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति विभाग
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. भारतभूषण मिश्र
अध्यक्ष - ज्योतिषविभाग,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, मुम्बई परिसर, मुम्बई

प्रो. हंसधर झा
अध्यक्ष - ज्योतिषविभाग,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल

डॉ. सनन्दन कुमार त्रिपाठी
वरिष्ठसहायकाचार्य,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल

ISSN 2278 - 0327

RNI/MPHIN/2013/61414 Bi - Monthly
Refereed Journal

ज्योतिर्वेद-प्रस्थानम्

संस्कृत वाङ्मय की शोधपत्रिका-संस्कृत छात्रों की मार्गदर्शिका

प्रधान सम्पादक

डॉ. पी.वी.बी. सुब्रह्मण्यम्

9805034336

कार्यकारी सम्पादक

अविनाश उपाध्याय

9039804102

सम्पादक

रोहित पचौरी

9752529724

डॉ. भूपेन्द्र कुमार पाण्डेय

9754648985

ज्ञान सहयोग

पिडपर्ति पूर्णय्या विज्ञान ट्रष्ट चैन्नै

प्रकाशक

भारतीय ज्योतिषम्

एल - 108, **संत आशाराम नगर,**

फेज - 3, **लहारपुर,**

भोपाल - 462043

मध्यप्रदेश

Web - www.bharatiyajyotisham.com

E.mail : bharatiyajyotisham@gmail.com

Mob : 9752529724, 9039804102

Jyotirveda-Prasthanam is printed & published by Smt P V N B Srilakshmi on behalf of Bharatiyajyotisham Pvt. limited.
L 108, Sant Asharam Nagar Phase - 3,
Laharpur, Bhopal - 462043

Editor - ROHIT PACHORI*

सम्पादकीय

संस्कृत साहित्य की प्राथमिकताओं में मूल्य, शिक्षा तथा सामाजिक कल्याण सदा मुख्य विषय रहे हैं, इनको ध्यान में रखते हुए वैदिक काल से आज तक संस्कृत वाङ्मय का प्रचार-प्रसार होता रहा है। यहाँ की शिक्षा मात्र जीविकोपार्जन हेतु नहीं बनी है अपितु यहाँ की शिक्षा तथा शिक्षक सदा विश्व के मार्गदर्शक रहे हैं और वर्तमान में भी इस शिक्षा में एवं इस वाङ्मय में विश्व को मार्गदर्शन करने की सत्ता विद्यमान है। इन्हीं मूल्यों का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण समय का प्रयोग किया है । भारत में प्रौद्योगिकी संस्थानों के आविर्भाव में तथा बड़े उद्योगों की स्थापना में स्वामीजी का महत्त्वपूर्ण योगदान व मार्गदर्शन रहा। यहाँ की शिक्षा स्वामीजी जैसे अनेकों के प्रादुर्भाव में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। आज केवल जीविकोपार्जन तथा धनार्जन हेतु प्राप्त की जाने वाली शिक्षा दूरगामी दुष्परिणामों को जन्म दे सकती है। इससे समाज में उत्पन्न अनेक विकारों के समाधान हेतु स्वामीजी जैसे महानुभावों का निर्माण करने वाली शिक्षा समाप्त होती जा रही है।

दूसरी ओर संस्कृत वाङ्मय के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के सन्दर्भ में भी संशयात्मक प्रचार-प्रसार अधिक होते जा रहे हैं। प्राचीन साहित्य में इन वेदाङ्गों तथा विषयों का प्रसक्ति के सन्दर्भ में लोगों को सामान्य ज्ञान देने में भी विद्वान लोग असफल होते हुए नजर आ रहे हैं। यहाँ की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मूल्यों का निर्माण तथा सामाजिक परिपुष्टता के लिये प्रयास करना है, किन्तु वर्तमान में संस्कृतज्ञ इस दायित्व से दूर होते हुए नजर आ रहे हैं तथा जीविकोपार्जन तथा द्रव्यार्जन जैसे आधुनिक शिक्षा के उद्देश्य ही संस्कृतज्ञों के भी उद्देश्य बनते जा रहे हैं। जागो संस्कृतज्ञ। आप को स्वामीजी जैसे प्रेरणास्रोत बनना है। टाटा जैसे उद्योगों का तथा आईआईटी खरगपुर जैसे संस्थानों का निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने का प्रयास करना है।

पत्रिका से सम्बन्धित सभी पद अवैतनिक है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों से प्रकाशक को सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान भोपाल न्यायालय से ही स्वीकार्य है। शोधलेख आमन्त्रित है। पूर्वप्रकाशित लेख अनुमत नहीं है। लेख से सम्बन्धित विवादों का दायित्व लेखक का ही होगा। लेख को स्वीकार व अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार प्रकाशक को है।

ISSN 2278 - 0327

वैदिक हिंसा, एक षड्यन्त्र

Animal sacrifice in Vedic literature – a conspiracy of faith destruction

डॉ. विवेक शर्मा
सहायकाचार्य, संस्कृतविभाग
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला
जिला कांगड़ा, हिमाचलप्रदेश

Abstract - There is no place for animal sacrifice in Vedic literature. But in the later times, some of the hymns have been wrongly interpreted by some of the commentators. Some have willfully started the sacrifice in the name of translated and ill commented hymns. Many of the hymns and references vindicate the strong practice of peace and non cruel practices and they prove the strength of love towards all living and non living beings. The references have been quoted at large and the conclusion makes an attempt to discover the plot of someone to malign the entire Vedic literature.

पशु हिंसा के सन्दर्भ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सोचा जाये तो जहाँ एक ओर पशुओं से समान्य क्रीडा करने वाले खेल महोत्सव **जलीकट्टु** पर निषेध हेतु उच्चतम न्यायालय में अर्जी देकर दिखावटी पशु रक्षा का प्रदर्शन किया जाता है। जबकि इसके साथ ही पशु हिंसा रोकने के लिये कोई कानून जब सरकार द्वारा लाया जाता है, तो उसके विरोध करने के लिये आसुरी प्रवृत्तियों से ओतप्रोत कुछ असामाजिक तत्त्व केरल में सामूहिक रूप से मूक और निरपराध बछड़े की हत्या कर देते हैं। इन छद्म सैकुलरवादियों में पशुहिंसा के सन्दर्भ में दोमुँहा दृष्टिकोण देखने को मिलता है। देश के बहुत से 'पोलिटिकल पण्डितों' का कहना होता है कि जलीकट्टु में बैल का आलिङ्गन करते हुये भागना उन पर अत्याचार है, जबकि वही बुद्धिजीवी बीच चौराहे पर गौवंश को काटने को वे अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता मानकर मौन हो जाते हैं। इस तरह गौवंश को काटकर जो असहिष्णुता का प्रदर्शन किया जाता है, उसके विरोध में एवार्ड वापसी समूह भी नहीं दिखते हैं। जबकि गौवध पर प्रतिबन्ध सम्बन्धी कानून बनाने के बारे में या अवैध कत्लखानों को बन्द करने में सरकार यदि कदम उठाने लगती है तो कईयों को उसमें कट्टरवाद, असहिष्णुता एवं धार्मिक उन्माद दिखने लगता है।

ऐसे दुराचारी केवल वर्तमान काल में ही नहीं हैं, अपितु सैकडों वर्षों से हमारी संस्कृति को क्षति पहुँचाने में लगे हुये हैं। ऐसे ही आसुरी प्रकृति वाले लोगों ने अपनी प्रकृति के अनुकूल यज्ञ, श्राद्ध या मधुपर्कादि में मांसादि का विधान कर मीमांसा शास्त्र को हानि पहुँचायी। एक षड्यन्त्र से इस मांस भक्षण के निर्देश को विधिसम्मत भी घोषित कर दिया गया। जबकि *अपि वा दानमात्रं स्यात् भक्षशब्दानभिसम्बन्धात्*[1] इत्यादि सूत्रों में पशुओं के मात्र दान का विधान किया गया है, न कि पशुओं की हिंसा का। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' इस सिद्धान्त का आश्रय लेकर पशुबलि को स्वीकार कर लिया गया। यही पशु हिंसा कालान्तर में विरोध स्वरूप बौद्ध एवं जैन मत के उद्भव का कारण बना।

वस्तुतः पशुहिंसा की तो गन्धमात्र भी मींमासाशास्त्र में नहीं है। यह केवल *अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः* इस उपनिषद् वाक्य के अनुसार अन्धपरम्परा के अन्तर्गत एक-दूसरे का अन्धानुकरण करने वाले टीकाकारों के अनवधान एवं स्वार्थ का परिणाम है। *वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति* ऐसा भ्रम फैलाकर कुछ दुराचारी, एवं मांसाहारी लोग यज्ञ में पशुओं को काटने लगे और यह भ्रम भी उनके द्वारा फैला दिया गया कि यज्ञ में पशुहिंसा करने वाला सीधा स्वर्ग को जाता है। दुःख का विषय तो यह रहा कि यह कुकृत्य वेद के नाम पर किया गया। शायद यही एक मुख्य कारण रहा कि हमारे अपने धर्म के बीच में विरोध के स्वर उठने लगे और बौद्ध मत या जैन मतों का उद्भव हुआ। यहाँ तक तो सब ठीक था, लेकिन हद तो तब हो गई जब हमारे इन कृत्यों को देखकर चार्वाक् मतावलम्बियों को वेद के विरोध में अपना स्वर तीव्र करने का अवसर मिल

गया। और हमारी अमूल्य धरोहर वेद के लिये कहा गया –

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः।
जर्भरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्॥[2]

इन्हीं न्यूनताओं के कारण विदेशियों द्वारा वेदों को गड़रियों के गीत कहने पर भी हम उनका विरोध नहीं कर सके। यज्ञहिंसा को देखकर ही भोगवादियों ने यह कहने का दुस्साहस किया कि यज्ञ केवल मृत व्यक्तियों और प्रेतों का कार्य मात्र है और कुछ नहीं। साथ ही उन्होंने कहा कि यज्ञ केवल पण्डितों द्वारा बनाया गया केवल आय का साधन मात्र है –

ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह।
मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित्॥[3]

हम में से कई लोग यज्ञ में होने वाली हिंसा को सही साबित करने के लिये बार-बार अनर्थक एवं अनर्गल प्रयास करते रहे। जिससे वैदिक साहित्य का लाभ के स्थान पर हानि ही हुयी, तथा इससे वेदों का दुष्प्रचार ही हुआ। जब किसी ने यह कुतर्क दिया कि यज्ञ में पशु की बलि देने से पशु को भी स्वर्ग प्राप्त होता है तो भोगवादियों ने इस तर्क का भी कटु विरोध करते हुये कहा यदि यज्ञ में बलि किये गये पशु को स्वर्ग की प्राप्ति होती है तो यजमान अपने पिता को ही क्यों न बलि में मार देता –

निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते।
स्वपिता यजमानेन किन्नु तस्मान्न हन्यते॥[4]

ऐसा नहीं कि याज्ञीय हिंसा की समाप्ति के लिये वैदिकों ने प्रयास नहीं किया होगा, लेकिन एक बार फैलायी गयी भ्रान्ति का निवारण करना अत्यन्त दुरुह कार्य है। लेकिन हमें इन परिस्थियों में घबराना नहीं चाहिये। विरोध उसी का होता है जो सामर्थ्यवान् हो। हमारा धर्म प्रसारित, विस्तारित एवं सामर्थ्यवान् भी है इसलिये हमारे धर्म पर छींटाकशी कुछ लोग करते ही रहेंगें। बस आवश्यकता है तो यह कि हम वैदिक सूक्तों के वास्तविक अर्थों को समाज के सम्मुख लायें। जहाँ कहीं संशय भी कोई यदि करे तो उन संशयों का समाधन तथ्यात्मक रूप से करना चाहिये।

उदाहरण के लिये अथर्ववेद के नवम काण्ड के चतुर्थ सूक्त में गौओं से सन्तानोत्पादन के लिये निर्युक्त किये जाने वाले वृषभ की महिमा का वर्णन किया गया है। वहाँ काव्यात्मक एवं अलङ्कारिक भाषा में वर्णित किया गया है कि यदि किसी के घर में उत्तम कोटि का बछड़ा उत्पन्न हो जाये तो उसे नगर की गौओं से सन्तान उत्पन्न करने के लिये दान कर देना चाहिये। भाव यह हुआ कि उस बछड़े को राज्य को सौंप देना चाहिये। 24 मन्त्रों के इस सूक्त में ऐसे बृषभ के गुणों और उससे होने वाले लाभों का विस्तार से वर्णन करते हुये उसे *पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानाम्*[5] कहा गया है। अर्थात् बैल को उत्तम बछड़े बछड़ियों को उत्पन्न करने वाला पिता कहा गया है और गौओं को अनघ्नानाम् इत्युक्ते 'न मारने योग्य' कहकर उनका पति भी कहा गया है। यहाँ ऐसे बैल को नियुक्त करने का प्रयोजन यह बतलाया गया है कि वह बैल *तन्तुमातान्*[6] अर्थात् सन्तान रूपी तन्तु को आगे फैलाने वाला हो सके जिससे प्रजा को घी-दूध भरपूर मात्रा में प्राप्त हो सके। लेकिन अधिकतर व्याख्याकारों ने इस सुन्दर सूक्त की व्याख्या ठीक से नहीं की। यहाँ तक कि प्रतिष्ठित भाष्यकार सायण ने भी इस महत्त्वपूर्ण सूक्त का विनियोग बैल को मारकर उसके मांस से होम करने में किया। सायण ने इस मन्त्र के भाष्य की उत्थानिका में लिखा है – *ब्राह्मणो वृषभं हत्वा तन्मांसं भिन्नभिन्नदेवताभ्यो जुहोति। तत्र वृषभस्य प्रशंसा तदङ्गानां च कतमानि कतमदेवेभ्यः प्रियाणि भवन्ति तद्विवेचनम्। वृषभबलिहवनस्य महत्त्वं च वर्ण्यते। तदुत्पन्नं श्रेयश्च स्तूयते।* अपने भाष्य द्वारा सायणाचार्य का यह कहना था कि ब्राह्मण वृषभ बैल को मारकर उसके मांस से भिन्न-भिन्न देवताओं को आहुति देता है। सायण ने यहाँ बैल की प्रशंसा करते हुये प्रतिपादित किया है कि कौन-कौन से अङ्ग किस-किस देवता को प्रिय हैं। साथ ही यहाँ वृषभ की बलि द्वारा हवन के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। लेकिन सायण जैसे प्रतिष्ठित भाष्यकारों का ऐसा भाष्य तर्कसङ्गत नहीं लगता क्योंकि सूक्त में किया गया बैल का वर्णन बैल के काटे जाने से कैसे तर्कसङ्गत हो सकता है। भला मरे हुये बैल से बछडे-बछडियाँ उत्पन्न होकर कैसे दूध-घी प्रदान कर सकते हैं ? अथर्ववेद के इस सूक्त का अर्थ गोवंश को मारकर उसके मांस से यज्ञ में आहुतियाँ देने विषयक किसी भी प्रकार से नहीं किया जा सकता है।

साथ ही तै. सं. में पाठ है – *सोमापौष्णं त्रैतमालभेत पशुकाम.....औदुम्बरो यूपो भवति, ऊग्वा उदुम्बर ऊर्क् पशवः।*[7] अर्थात् सोम और पूषा देवता का पूजन करने वाले त्रैत पशु का आलभन करें, स्पर्श करें अथवा प्राप्त करें। किन्तु यहाँ ध्यातव्य यह है कि यहाँ पशु का प्रयोग अन्न के लिये हुआ है। *अन्नं उ वै पशवः*[8], *पशवो वाऽअन्नम्*[9], *पशुर्वाऽअन्नम्*[10] इत्यादि में अन्न को ही पशु कहा गया है। अतः पूर्वोक्त सन्दर्भ में अर्थ होगा – अन्नकामः, अन्न की कामना करने वाला त्रैत का आलभन

करें, उसके साथ सम्पर्क करें, उसके साथ सान्निध्य एवं सम्बन्ध स्थापित करें। साथ ही अन्नमु वै पशव: इत्यादि वाक्यों का यह अर्थ नहीं पशु (अजा इत्यादि) अन्न है अर्थात् खाद्य है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से लिखा है –*अपशवो वा एते यदजावयश्चारण्याश्च। एते वै सर्वे पशव: यद्व्या*[11] इति, ये जो अजा(बकरी), अवि(भेड) और जितने अरण्यचारी प्राणी हैं, सब निश्चय ही अपशव हैं अर्थात् अखाद्य हैं। तैत्तिरीय संहिता के एक स्थल पर अन्न के वास्तविक स्वरूप को बतलाते हुये कहा गया है कि *दधि मधु घृतमापो धाना भवन्ति, एतद्वैपशूनां रूपम्।*[12] इसी सन्दर्भ में आगे कहा गया है कि *बहुरूपा हि पशव:* –अन्न अनेक प्रकार के होते हैं। वेदानुसार तीन का एक समूह और है, जो अन्नों के उत्पादन में मुख्य साधन है – पृथ्वी (भूमि), वर्षा (पर्जन्य), आतप (सूर्य)। साथ ही शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि तीन के समूह से अथवा तीन के इकट्ठे होने से या तीन के मिथुन से अन्न होता है। वे तीन हैं – कृषि, वृष्टि, बीज (*त्रिवृद्वाऽअन्नं कृषिर्वष्टिबीजम्*[13])। वैदिक वाङ्मय के सूक्तों में इन तीनों के द्वारा अन्नोत्पत्ति का प्रतिपादन हुआ है। *इयं (पृथिवी) हि पशूनां योनि:* [14] अर्थात् यह पृथिवी ही अन्नों की योनि अथवा उत्पत्ति स्थान है। *अद्भ्यो ह्येष ओषधीभ्य:*[15] संभवति यत् पशु:, जलों और औषधियों के सहयोग से अन्न अपने स्वरूप में आविर्भूत होता है। यह तो स्पष्ट ही है कि सूर्य की अग्नि/ताप के बिना अन्न सम्भव नहीं है अत एव वेद निर्देशित करता है कि *आग्नेया: सर्वे पश्व उच्यन्ते*[16] अर्थात् आतप अन्नों के उत्पादन में मुख्य साधनभूत है। इस अन्न के प्रतिपादन में सबसे मुख्यभूता, इसकी आश्रय स्वरूपा या इसे प्रदान करने वाली पृथिवी है। अत एव मैत्रायणी संहिता में कहा गया है कि *इयं (पृथिवी) अन्नस्य प्रदायिका।*[17] उपरोक्त सोमापौष्णं त्रैतमालभेत पशुकाम..... अर्थात् पशु (अन्न) की कामना करने वाले त्रैत का आलभन करे, स्पर्श करे अथवा प्राप्त करे इत्यादि में जो त्रैत और पशुकाम: के सन्दर्भ का प्रयोजन अब ध्यान में आता है। वस्तुत: जल, पृथिवी और सूर्य यह त्रैत/त्रित ही अन्न से आधारभूत साधन हैं। इसलिये वेद वाक्यों को पहले हमें समझना होगा फिर समाज को समझाना होगा। तभी पशु हिंसा रूपी प्रवादों या भ्रमों का निवारण हो पायेगा।

अत: स्वाध्यायोऽध्येतव्य: यह विधिवाक्य मन्त्रपाठ और उसके अर्थज्ञान दोनों का विधान करता है। यहाँ स्वाध्याय पद से तात्पर्य केवल पाठ को रटना ही नहीं अपितु पद एवं पदार्थ को यथार्थ रूप से समझना भी इसी के अन्तर्गत आता है। वस्तुत: स्वाध्याय में मन्त्र और मन्त्रार्थ दोनों अभिप्रेत हैं। जो ऐसा नहीं समझते उनके लिये निरुक्तकार का कहना है कि जो वेद को अर्थ सहित नहीं जानता वह एक सूखे ठूंठ के सदृश है और जो वेद को अर्थ सहित जानने वाला है वही स्वर्ग को पाता है –

स्थाणुरयं भारहार: किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥[18]

इसके अतिरिक्त यज्ञ के पर्याय के रूप में अथवा कहीं-कहीं विशेष रूप से यज्ञ के लिये अध्वर शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर किया गया है। इस अध्वर शब्द की व्युत्पत्ति करते हुये निरुक्तकार यास्क बतलाते हैं कि *अध्वर इति यज्ञनाम। ध्वरेति हिंसा कर्म तत्प्रतिषेध:।* [19] वैदिक शब्दों के निर्वचन में यास्क को सबसे प्रामाणिक माना जाता है, जिन्होंने यज्ञ के हिंसात्मक शब्द का निषेध किया है। वस्तुत: ध्वर हिंसा कर्म हुआ और इस तरह अध्वर अहिंसा कर्म हुआ। अत: इस आधार पर स्पष्ट है कि यज्ञों में पशुवध की कल्पना करने पर अध्वर शब्द कदापि सार्थक नहीं हो सकता।

सन्दर्भ –

1. मीमांसा, 10/7/15
2. सर्वदर्शनसंग्रह, चार्वाकदर्शन, 21
3. सर्वदर्शनसंग्रह, चार्वाकदर्शन, 20
4. सर्वदर्शनसंग्रह, चार्वाकदर्शन, 21, टिप्पणीभाग, पृष्ठ- 21
5. अथर्ववेद, 9/4/4
6. अथर्ववेद, 9/4/1
7. तैत्तिरीयसंहिता, 2/1/1
8. जैमिनीयम्, 3/141
9. माश., 4/6/9/1
10. माश., 5/1/3/7
11. तैत्तिरीयब्राह्मण, 3/9/9/2
12. तैत्तिरीयसंहिता, 3/3/2/8
13. शतपथब्राह्मण, 8/3/2/2
14. मैत्रायणीसंहिता, 3/7/7
15. तैत्तिरीयसंहिता, 6/3/6/4/1
16. काठ.संहिता, 26/7
17. मैत्रायणीसंहिता, 2/5/7
18. निरुक्त, 1/17
19. निरुक्त, 1/8